International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 15 Issue 05||May. 2026 || PP.110-119

मानव और प्रकृति के बीच संबंध: पुरातात्विकसाक्ष्यों के आलोक में एक समीक्षा

डॉ॰ हेमंत कुमार मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास
स्वामी देवानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मठ लार देवरिया उ.प्र.

संक्षेप
मनुष्य और प्रकृति के बीच तथाकथित तात्विक सीमा मूलतः एक आधुनिक अवधारणा है, और प्राचीन काल के भौतिक अभिलेखों को देखने पर यह स्पष्ट रूप से चुनौती का सामना करती है। इस सहकर्मी-समीक्षित लेख में, हम निम्न पुरापाषाण काल से लेकर जटिल कांस्य युग के शहरीकरण के पतन तक मानव-प्रकृति संबंधों का एक व्यापक वृहद-ऐतिहासिक और सैद्धांतिक संश्लेषण प्रस्तुत करते हैं, और यह हम विभिन्न क्षेत्रों के पुरातात्विक डेटासेटों के गहन विश्लेषण के माध्यम से करते हैं। पर्यावरणीय पुरातत्व, स्थिर समस्थानिक विश्लेषण, भूदृश्य ताफोनी और प्राणी-पुरातत्व एवं पुरावनस्पति विज्ञान मैट्रिक्स को एक साथ लाकर, यह अध्ययन इस प्रश्न को उठाता है कि होमोनिन्स किस प्रकार अपने जैवमंडल के पारिस्थितिक रूप से अंतर्निहित भागों से, जीवमंडल के अधिक सुनियोजित, व्यवस्थित निर्माता बनने की ओर अग्रसर हुए, भले ही यह परिवर्तन सुव्यवस्थित न रहा हो।
हम बहु-दिशात्मक प्रतिक्रिया चक्रों का भी अध्ययन करते हैं जहाँ मानव प्रौद्योगिकी और पारिस्थितिक तंत्र चार महत्वपूर्ण पड़ावों पर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं: पुरापाषाण काल में स्थान निर्माण और अग्नि का घरेलूकरण; मध्यपाषाण काल की तथाकथित व्यापक क्रांतियाँ; नवपाषाणकालीन कृषि क्रांति से जुड़े सामाजिक-पारिस्थितिक व्यवधान; और सिंधु घाटी, मेसोपोटामिया और नील नदी जैसी कांस्य युग की राज्य स्तरीय समाजों द्वारा किए गए उच्च-घनत्व वाले जलवैज्ञानिक हेरफेर। परिणाम बताते हैं कि पर्यावरण के साथ मानव का जुड़ाव कभी भी सीधा या विशुद्ध रूप से शोषणकारी नहीं रहा है। इसके बजाय, यह गहन सह-विकास, निरंतर विशिष्ट परिवेश निर्माण और चक्रों में लौटने वाले आवर्ती स्थिरता संकटों जैसा प्रतीत होता है। अंत में, यह लेख आज के एंथ्रोपोसीन विवाद को इस तर्क के साथ प्रस्तुत करता है कि प्राचीन मानव-प्रेरित भूदृश्य परिवर्तनों ने अक्सर ऐतिहासिक पारिस्थितिक पतन को जन्म दिया, विशेष रूप से तब जब निष्कर्षण दर स्थानीय वहन क्षमता से अधिक हो गई। और इससे ऐसे अनुभवजन्य सबक मिलते हैं जो वर्तमान जलवायु शमन और पारिस्थितिक शासन के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

मुख्य शब्द:पर्यावरण पुरातत्व, निकेत निर्माण सिद्धांत, एंथ्रोपोसीन, प्राचीनावशेष वनस्पति मैट्रिक्स, पुरा-जलवायु संकेतक, सामाजिक-पारिस्थितिक तंत्र, पालतूकरण

1. प्रस्तावना: पुरातत्व और पारिस्थितिकी का वैचारिक मिलन

इंसान और प्रकृति के बीच की जो यह कथित दार्शनिक सीमा है, वह असल में आधुनिक सोच की उपज है। अगर हम प्राचीन काल के भौतिक साक्ष्यों को देखें, तो यह सीमा पूरी तरह टूटती हुई नजर आती है। इस समीक्षित शोध लेख में, हम आदि-पाषाण काल से लेकर कांस्य युग की जटिल शहरी व्यवस्थाओं के पतन तक के मानव-प्रकृति संबंधों का एक व्यापक ऐतिहासिक और सैद्धांतिक खाका पेश कर रहे हैं। इसके लिए हमने अलग-अलग क्षेत्रों के पुरातात्विक आंकड़ों का गहन विश्लेषण किया है। पर्यावरण पुरातत्व, स्थिर आइसोटोप विश्लेषण, लैंडस्केप टैफ़ोनॉमी, और प्राणि-पुरातात्विक व वनस्पति-पुरातात्विक मैट्रिक्स को एक साथ जोड़कर यह अध्ययन यह समझने की कोशिश करता है कि आदिमानवों ने खुद को अपने बायोम के एक सामान्य हिस्से से बदलकर कैसे जीवमंडल के एक सजग और व्यवस्थित निर्माता के रूप में स्थापित किया—भले ही यह बदलाव इतना सीधा और आसान नहीं था।

इसके साथ ही, हम उन बहु-दिशात्मक फीडबैक लूप्स का भी अध्ययन करते हैं जहाँ मानव तकनीक और पारिस्थितिक तंत्र चार महत्वपूर्ण पड़ावों पर लगातार एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे: पाषाण कालीन निकेत निर्माण और आग पर नियंत्रण; मध्य पाषाण काल की कथित व्यापक-स्पेक्ट्रम क्रांतियां; नवपाषाण कालीन कृषि क्रांति से जुड़ी सामाजिक-पारिस्थितिक उथल-पुथल; और सिंधु घाटी, मेसोपोटामिया और नील नदी जैसी कांस्य युगीन राज्य-स्तरीय सभ्यताओं द्वारा बड़े पैमाने पर किया गया जल प्रबंधन। परिणाम बताते हैं कि पर्यावरण के साथ इंसानों का जुड़ाव कभी भी सीधा या केवल शोषण पर आधारित नहीं रहा है। इसके बजाय, यह गहरा सह-विकास, लगातार चलता रहने वाला निकेत निर्माण और बार-बार चक्रों में लौटने वाले निरंतरता के संकट जैसा दिखता है। अंत में, यह लेख आज के एंथ्रोपोसीन की बहस को एक नया संदर्भ देता है। इसमें यह तर्क दिया गया है कि प्राचीन काल में इंसानों द्वारा पर्यावरण में किए गए बदलावों ने अक्सर ऐतिहासिक पारिस्थितिक पतन की जमीन तैयार की, खासकर तब जब संसाधनों के दोहन की दर वहां की स्थानीय वहन क्षमता से अधिक हो गई। और यही बातें हमें ऐसे व्यावहारिक सबक देती हैं जो आज के जलवायु शमन और पर्यावरणीय शासन के लिए बेहद मायने रख सकते हैं।

यह समीक्षा लेख बड़े सांस्कृतिक और तकनीकी पड़ावों के बीच अलग-अलग क्षेत्रों के पुरातात्विक आंकड़ों को एक साथ जोड़ता है, और इसे इस तरह पेश करता है कि सब कुछ आपस में जुड़ा हुआ महसूस हो। यह समझने के लिए कि असल में क्या चल रहा था, यह लेख प्राचीन परिवेश के भौतिक जनजीवन (material culture), बड़े वनस्पति अवशेषों (macro botanical remains), जानवरों के कंकालों के रिकॉर्ड और भू-आकृतिक स्वरूप (geomorphological profiles) पर नज़र डालता है। कुल मिलाकर, यह इंसान और प्रकृति के बदलते रिश्तों के दायरे को साफ दिखाता है, जहाँ आप इस बदलाव को लगभग महसूस कर सकते हैं। यह दिखाता है कि कैसे होमो (Homo) प्रजातियाँ किसी पारिस्थितिक निकेत (ecological niche) के भीतर रहने वाले एक साधारण जीव से बढ़कर इस ग्रह की सबसे मुख्य पारिस्थितिक निर्माता बन गईं। यह सिर्फ व्यवहार में आया कोई छोटा-मोटा बदलाव नहीं था, बल्कि समय के साथ सोच और जीने के तरीके में आया एक बड़ा मोड़ था।

2. सैद्धांतिक ढांचा: निकेत निर्माण और परिदृश्य का द्वंद्व

पुरातात्विक रिकॉर्ड को पर्यावरणीय नियतिवाद (environmental determinism) या सांस्कृतिक संकीर्णता (cultural reductionism) की कमियों में फंसे बिना समझने के लिए, यह शोध पत्र 'निकेत निर्माण सिद्धांत' (Niche Construction Theory - NCT) को अपने मुख्य विश्लेषणात्मक ढांचे के रूप में चुनता है। पारंपरिक विकासवादी जीवविज्ञान (evolutionary biology) में अक्सर जीवित जीवों को केवल एक निष्क्रिय भूमिका में देखा जाता है, जो बाहरी पर्यावरणीय चयन के दबावों का सामना करते हैं। लेकिन NCT इस नजरिए को बदल देता है। यह कहता है कि जीव केवल पर्यावरण के थपेड़ों को झेलते नहीं हैं, बल्कि वे अपनी भौतिक उपस्थिति और व्यवहार से अपने और दूसरी प्रजातियों के लिए भी पर्यावरण के चयन के दबावों को सक्रिय रूप से बदलते हैं—भले ही यह काम परोक्ष रूप से ही क्यों न हो रहा हो।

इंसानी पुरातत्व में इस तरह का निर्माण 'सांस्कृतिक परिदृश्य' (Cultural Landscapes) के रूप में सामने आता है। कोई भी 'परिदृश्य' या लैंडस्केप सिर्फ 'प्रकृति' नहीं होता; यह एक भूगर्भीय आधार पर इंसानी फैसलों, मेहनत और उनकी वैचारिक सोच की परतों से बना एक जीता-जागता अभिलेखागार (archive) है। जब शुरुआती इंसानों ने आग की मदद से जंगलों को साफ किया, किसी जलधारा का रुख मोड़ा, या चुनिंदा रूप से फल देने वाले पेड़ों को बचाए रखा, तो वे असल में एक विरासत बना रहे थे। उन्होंने अपने पीछे एक बदला हुआ भौतिक परिवेश छोड़ा, और उसी परिवेश ने आगे चलकर आने वाली पीढ़ियों के आर्थिक और विकासवादी रास्तों को तय किया।

यह शोध पत्र पर्यावरण पुरातत्व की तीन आपस में जुड़ी उप-शाखाओं के माध्यम से इस रिश्ते का मूल्यांकन करता है:

- **प्राचीनावशेष वनस्पति विश्लेषण (Archaeobotanical Analysis):**इसके तहत प्राचीन बड़े वनस्पति अवशेषों (जैसे जले हुए बीज, लकड़ी का कोयला) और सूक्ष्म वनस्पति संकेतकों (जैसे फाइटोलिथ, पराग कण) का अध्ययन किया जाता है ताकि वनस्पतियों के बदलते चक्र, जंगलों की कटाई और कृषि के लिए पौधों के चयन को समझा जा सके।

- **प्राणि-पुरातात्विक विश्लेषण (Zooarchaeological Analysis):**इसके अंतर्गत जानवरों की हड्डियों को खोजना, उनकी पहचान करना और उनके अवशेषों का अध्ययन (taphonomic tracking) शामिल है, ताकि शिकार के दबाव, पाले गए झुंडों की स्थिति और जानवरों को पालतू बनाने के रास्तों को समझा जा सके।
- **भू-पुरातत्व (Geoarchaeology):**मिट्टी के कटाव की दर, इंसानों द्वारा जमा की गई परतों और जल चक्र में मानव-जनित बदलावों का पता लगाने के लिए भू-आकृतिक, तलछटी (sedimentological) और सूक्ष्म-आकृतिक तकनीकों का उपयोग करना।

3. पाषाण कालीन आधार: आदिमानव का भोजन संकलन, विशालकाय जीव और आग पर नियंत्रण

आदि- से मध्य-पाषाण कालीन निकेत में बदलाव

आदिमानव के विकास के शुरुआती चरणों को अक्सर पूरी तरह से प्रकृति में घुले-मिले होने के दौर के रूप में देखा जाता है, जहाँ सब कुछ पर्यावरण के हिसाब से एकदम सधा हुआ था। लेकिन आदि- से मध्य-पाषाण काल के रिकॉर्ड कुछ अलग ही कहानी बयां करते हैं। शुरुआती होमो प्रजातियां—जैसे*होमो इरेक्टस, होमो निएंडरथैलेन्सिस,* और आदिम*होमो सेपियन्स*—पहले से ही पर्यावरण पर अपना वास्तविक असर डाल रही थीं। जब उन्होंने अशुलीयन (Acheulean) पत्थरों के औजार, खासकर दोनों तरफ से धारदार कुल्हाड़ियाँ बनाना शुरू किया, तो इससे उनके खान-पान के स्तर (trophic shift) में एक बड़ा बदलाव आया। आदिमानव मरे हुए जानवरों को खाने की स्थिति से निकलकर सीधे बड़े शिकारियों की कतार में आ खड़े हुए। और इस पूरे बदलाव ने पाषाण काल के परिदृश्य में शिकारी और शिकार के बीच के पुराने समीकरण को पूरी तरह बदल दिया।

फिर भी, इस दौर में प्रकृति के साथ आदिमानवों के संबंध में सबसे बड़ा बदलाव पायरोटेक्नोलॉजी (pyrotechnology), यानी मोटे तौर पर आग पर नियंत्रण और उसके इस्तेमाल से आया। दक्षिण अफ्रीका की वंडरवर्क गुफा (लगभग 10 लाख साल पहले) और इजरायल के गेशर बेनोत याकोव (लगभग 7,90,000 साल पहले) जैसे स्थानों से मिले पुरातात्विक साक्ष्य बताते हैं कि आग पर काबू पाना आदिमानवों की बहुत पुरानी आदत रही है, यह कोई हाल-फिलहाल का आविष्कार नहीं था।

आग ने मुख्य रूप से इन तरीकों से इंसानी पारिस्थितिकी को बदल दिया:

- **आहार आधारित समृद्ध जैव-ऊर्जा (Dietary Enriched Bio-energetics):**खाना पकाने से प्रोटीन और जटिल कार्बोहाइड्रेट आसानी से पचने वाले रूप में टूट गए। इसने पाचन के लिए शरीर की ऊर्जा की खपत को कम किया और सीधे तौर पर आदिमानव के दिमाग के विकास (encephalization) में मदद की।
- **परिदृश्य में बदलाव (Landscape Alteration):**इंसानों द्वारा लगाई गई आग से जंगलों की सफाई हुई, जिससे आग को झेलने वाले और कंदमूल वाले पौधों को बढ़ने का मौका मिला। साथ ही, नई उगी हरी घास ने शाकाहारी जानवरों को आकर्षित किया, जिससे शिकार के लिए निश्चित मैदान तैयार हो गए। यह जानबूझकर किए गए इकोसिस्टम इंजीनियरिंग का सबसे पहला रूप था।

उत्तर पाषाण कालीन बदलाव और विशालकाय जीवों के विलुप्त होने की बहस (Upper Paleolithic Transitions and the Megafaunal Extinction Debate)

उत्तर प्लाइस्टोसिन युग (लगभग 50,000 से 11,000 वर्ष पहले) के दौरान, आधुनिक इंसानों (*होमो सेपियन्स*) के भौगोलिक विस्तार के साथ ही दुनिया भर में विशालकाय जीवों (megafauna) के विलुप्त होने का दौर भी शुरू हुआ। यूरेशिया में ऊनी मैमथ (Mammuthus primigenius), अमेरिका में विशालकाय ग्राउंड स्लॉथ (Megatherium), और ऑस्ट्रेलिया में डिप्रोटोडॉन्टिड्स जैसे जाने-माने जीवों का गायब होना पर्यावरण पुरातत्व में आज भी एक तीखी बहस का विषय है।

प्राणि-पुरातात्विक रिकॉर्ड यहाँ एक दोहरे कारक वाले मॉडल (dual-forcing model) की ओर इशारा करते हैं। यूरेशियन मैमथ स्टेपी के उत्तर पाषाण कालीन स्थलों पर, जैसे कि यूक्रेन के मेझिरिच में, मौसम के अनुकूल रहने वाले

घरों को बनाने के लिए मैमथ की हड्डियों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया है। यह दिखाता है कि इंसानों ने इन जीवों का बहुत बड़े पैमाने पर और विशेष रूप से शिकार किया था। हड्डियों के कोलेजन से मिले स्थिर आइसोटोप के आंकड़े बताते हैं कि भले ही अंतिम हिमनद अधिकतम (LGM) के खत्म होने पर बदलते पुरा-जलवायु ने इन बड़े स्तनधारियों के आवासों को छोटा और बिखरा दिया था, लेकिन धीमी प्रजनन दर वाले इन विशाल जीवों पर इंसानों के लगातार शिकार के दबाव ने ही इन्हें पूरी तरह खत्म करने का काम किया।

इस विलुप्ति ने "मैमथ स्टेपी" इकोसिस्टम को पूरी तरह तहस-नहस कर दिया। इसके कारण हरे-भरे, खुले घास के मैदान कम उपजाऊ काई वाले टुंड्रा और शंकुधारी जंगलों में बदल गए, जो शुरुआती इंसानी शिकार के दूरगामी पारिस्थितिक परिणामों को उजागर करता है।

4. मध्य पाषाण काल की व्यापक-स्पेक्ट्रम क्रांति: बिना स्थायी निवास के जमीन का प्रबंधन

प्लाइस्टोसिन और होलोसीन युगों के मिलन काल (लगभग 15,000 से 10,000 वर्ष पहले) में तेजी से बढ़ती गर्मी ने स्थितियों को इस तरह बदला कि बर्फीले इकोसिस्टम बिखरने लगे और समशीतोष्ण (temperate) जंगलों का विस्तार होने लगा। इसके जवाब में मानव समाजों ने उस ओर रुख किया जिसे केंट फ्लैनरी ने 'व्यापक-स्पेक्ट्रम क्रांति' (Broad-Spectrum Revolution) कहा था। केवल कुछ बड़े प्रवासी जानवरों पर निर्भर रहने के बजाय, शिकारी इंसानों ने अपनी रणनीतियों को बदला और अपने भोजन के मेनू में विविधता लाए। अब वे छोटे स्तनधारियों, प्रवासी जलपक्षियों, मछलियों, घोंघों और कई तरह के जंगली पौधों का रुख करने लगे थे।

उत्तर-पाषाण और मध्य-पाषाण कालीन परिदृश्य प्रबंधन

मध्य पाषाण काल के रिकॉर्ड इस पुरानी धारणा को खारिज करते हैं कि शिकारी-संग्रहकर्ता अपने आस-पास की जगह पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ते थे। लैंडस्केप पैलीनोलॉजी (जीवाश्म पराग कणों का अध्ययन) और यूनाइटेड किंगडम के स्टार कार जैसे स्थलों से मिले मैक्रो चारकोल विश्लेषण से पता चलता है कि यह काम लोगों की सोच से कहीं अधिक नियमित और योजनाबद्ध था। वहाँ केवल अंधाधुंध कटाई नहीं, बल्कि व्यवस्थित मौसमी वन प्रबंधन के संकेत मिलते हैं। मध्य पाषाण कालीन समूहों ने जानबूझकर प्राचीन फ्लिक्सटन झील के किनारे की सरकंडों की झाड़ियों को जलाया। इसका उद्देश्य बर्च और हेज़ल की घनी झाड़ियों को साफ करना था, जिससे अधिक पैदावार वाले चारा देने वाले पौधों के प्रसार को बढ़ावा मिला। नतीजा यह हुआ कि लाल हिरण (Cervus elaphus), रो हिरण और औरोच (जंगली मवेशी) पानी के किनारों पर इस तरह आने लगे जिससे उनका शिकार करना काफी आसान और निश्चित हो गया।

इसी समय, लेवेंट (Levant) क्षेत्र में, नातुफियाई संस्कृति (लगभग 14,500–11,500 वर्ष पहले) ने अर्ध-स्थायी बेस कैंप बनाए। उनकी भौतिक व्यवस्था में पत्थरों से बनी वास्तुकला की नींव, भारी बेसाल्ट की ओखलियां और छोटे नुकीले पत्थरों (microliths) से बने हंसिए के हैंडल शामिल थे। इन ब्लेडों पर अक्सर एक खास चमक (sickle gloss) दिखाई देती है, जो जंगली अनाजों के तनों के भीतर मौजूद सिलिका की रगड़ से पैदा होती है।

वहीं दूसरी ओर, सीरिया के उत्तर-पाषाण कालीन अबू हुरैरा से मिले अनाजों के साक्ष्य इस कहानी को और आगे बढ़ाते हैं। जंगली जौ (Hordeum spontaneum) और राई (Secale cereale) के दाने बताते हैं कि ये लोग वास्तविक रूप से खेती शुरू होने से बहुत पहले से, कई पीढ़ियों से जंगली पौधों की प्रजातियों को प्रभावित कर रहे थे। वे खास जंगली गुणों को बढ़ावा देते थे और लगातार कटाई व छंटाई के जरिए वहां की स्थानीय वनस्पतियों के स्वरूप को बदल रहे थे।

5. नवपाषाण कालीन कृषि क्रांति: पालतूकरण, वनों की कटाई और स्थायी जीवन की उथल-पुथल

भोजन की तलाश में लगातार भटकने (hunting-gathering) की जिंदगी को छोड़कर एक जगह टिकने और खुद अनाज उगाने का यह बदलाव—जिसे हम नवपाषाण कालीन कृषि क्रांति के नाम से जानते हैं—असल में पूरी प्रागैतिहासिक कहानी का सबसे बड़ा सामाजिक-पारिस्थितिक मोड़ है। इसने इंसानों और प्रकृति के बीच के पुराने समीकरण को बुनियादी तौर पर बदलकर रख दिया। इसके बाद इंसानों की भूमिका सिर्फ पर्यावरण के साथ तालमेल बिठाने तक सीमित नहीं रही, बल्कि वे एक रणनीतिक सोच के साथ प्रकृति पर जैविक नियंत्रण (biological domination) बनाने की दिशा में बढ़ गए।

पालतूकरण की प्रक्रिया: आनुवंशिक और शारीरिक बदलाव

देखा जाए तो पालतूकरण (domestication) एक तरह की विकासवादी प्रक्रिया है जो आपसी तालमेल या सहजीवन (mutualism) पर चलती है। इसमें इंसान किसी खास प्रजाति के प्रजनन, सुरक्षा और भरण-पोषण पर अपना पूरा नियंत्रण बना लेता है। नतीजा यह होता है कि उस प्रजाति में कुछ समय बाद स्थायी आनुवंशिक (genetic) और शारीरिक (morphological) बदलाव आ जाते हैं—ये बदलाव कोई छोटे-मोटे सुधार नहीं बल्कि बिल्कुल बुनियादी होते हैं। पर्यावरण पुरातत्व इन बदलावों को कुछ जमीनी और भौतिक साक्ष्यों के जरिए समझने की कोशिश करता है:

1. कृषि फसलें (जैसे: गेहूं, जौ, चावल)

पौधों को पालतू बनाए जाने का सबसे बड़ा वनस्पति-पुरातात्विक संकेत यह है कि उनके नाजुक रैचिस (rachis—वह छोटा डंठल जो दाने को तने से जोड़ता है और जंगली पौधों में आसानी से टूट जाता है ताकि बीज बिखर सकें) की जगह एक सख्त, न टूटने वाला रैचिस ले लेता है। इंसानों द्वारा संभाले गए इस तंत्र में जो पौधे अपने बीज बहुत जल्दी गिरा देते हैं, वे इस चक्र से बाहर हो जाते हैं क्योंकि वे कटाई के वक्त बचते ही नहीं। इसके विपरीत, सख्त रैचिस वाले म्यूटेंट पौधों को इंसान इकट्ठा करता है, सुरक्षित रखता है और फिर से बोता है। गौर करने वाली बात यह है कि यह चयन धीरे-धीरे एक ऐसे पौधे को जन्म देता है जो अपने आगे के विकास और अस्तित्व के लिए पूरी तरह इंसानों पर निर्भर हो जाता है।

इसके अलावा, फसलों के पालतूकरण के साथ बीजों का आकार बड़ा होने लगता है और उनके सुरक्षात्मक आवरण (testa) की परत पतली हो जाती है। चूंकि हाथों से की जाने वाली निराई और सुरक्षित भंडारण की वजह से बीजों को लंबे समय तक सुप्त अवस्था (dormancy) में रहने की जरूरत नहीं होती, इसलिए शायद उनका बाहरी आवरण उतना सख्त नहीं रह जाता।

2. पालतू जानवर (जैसे: भेड़, बकरी, मवेशी, सुअर)

प्राणि-पुरातात्विक विशेषज्ञ (zooarchaeologists) अक्सर जानवरों के आकार में आई कमी (biometric reduction) के आधार पर पालतूकरण को समझने की कोशिश करते हैं। जंगली पूर्वजों (जैसे औरोच या जंगली सूअर) की तुलना में पालतू जानवरों का पूरा शरीर आकार में छोटा होने लगता है। इसके साथ ही, वे झुंड के जनसांख्यिकीय प्रोफाइल (demographic profiles) में आए बदलावों को भी देखते हैं क्योंकि हड्डियों के अवशेषों से कई राज खुलते हैं। शिकार के पुराने ढर्रे में हड्डियों का बिखराव सभी उम्र के जानवरों का मिलता है, जिसमें वे उम्र भी शामिल हैं जिन्हें आमतौर पर नजरअंदाज कर दिया जाता है।

इसके उलट, इंसानी देखरेख में पले झुंड का प्रोफाइल बिल्कुल अलग होता है। यहाँ एक सोची-समझी छंटनी (targeted culling) दिखाई देती है, जहाँ मांस के लिए छोटे नर जानवरों को ज्यादा मारा जाता है, जबकि वयस्क मादाओं को लंबी उम्र तक बचाया जाता है ताकि वे बच्चे पैदा कर सकें और दूध व ऊन जैसी चीजें दे सकें।

पालतूकरण के बहु-क्षेत्रीय रास्ते

पुरातात्विक साक्ष्य साफ तौर पर दिखाते हैं कि कृषि और पालतूकरण की शुरुआत दुनिया में किसी एक जादुई केंद्र से नहीं हुई थी। इसके बजाय, यह दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में लगभग एक ही समय पर उभरने वाली एक वैश्विक घटना थी:

भौगोलिक केंद्र (Geographic Center)	**अनुमानित कालक्रम (BP)**	**मुख्य पालतू वनस्पतियाँ (Primary Domesticated Flora)**	**मुख्य पालतू जीव (Primary Domesticated Fauna)**	**प्रमुख पुरातात्विक स्थल (Key Archaeological Type-Sites)**
फर्टाइल क्रेसेंट	11,500 – 10,000	एइरिकॉर्न गेहूं, एमर	भेड़, बकरी,	जेरिको (Jericho),

भौगोलिक केंद्र (Geographic Center)	**अनुमानित कालक्रम (BP)**	**मुख्य पालतू वनस्पतियाँ (Primary Domesticated Flora)**	**मुख्य पालतू जीव (Primary Domesticated Fauna)**	**प्रमुख पुरातात्विक स्थल (Key Archaeological Type-Sites)**
(लेवेंट/जाग्रोस)		गेहूं, जौ, मसूर	मवेशी, सुअर	चाटालहोयुक (Çatalhöyük), जार्मो, ऐन गज़ाल
पूर्वी एशिया (यांग्त्ज़ी और पीली नदी)	10,000 – 8,000	धान (Wetland Rice), फॉक्सटेल और ब्रूमकॉर्न बाजरा	सुअर, कुत्ता, मुर्गे-मुर्गियाँ	जियाहू, हेमुडू, सिशान
दक्षिण एशिया (सिंधु-गंगा का मैदान)	9,500 – 7,500	स्थानीय बाजरा, दलहन, चावल की प्रजातियाँ	कूबड़ वाले मवेशी (Zebu Cattle), भैंस	मेहरगढ़, लहुरादेवा
मेसोअमेरिका	9,000 – 7,000	मक्का (Maize), कद्दू, आम बीन्स	टर्की	गुइला नाक्विट्ज़, तेहुआकान घाटी
एंडीज पर्वतमाला	8,500 – 6,000	आलू, क्विनोआ	लामा, अल्पाका, गिनी पिग	गिटारेरो गुफा

नवपाषाण कालीन जीवनशैली के पर्यावरणीय प्रभाव

दरअसल, खेतीबाड़ी की तरफ बढ़ते कदमों ने पर्यावरण को बहुत गहरे जख्म दिए, भले ही वे नुकसान शुरुआती दौर में स्थानीय स्तर पर ही सीमित थे। खेती के लिए जमीन तैयार करने और चरागाहों को बनाए रखने के लिए, नवपाषाण कालीन समुदायों ने पुराने जंगलों के एक बहुत बड़े हिस्से को साफ कर दिया। इसके लिए उन्होंने पेड़ों की छाल उतारने (ring-barking), उन्हें काटने और फिर पारंपरिक झूम खेती (slash and burn) जैसे तरीकों को बेहद व्यवस्थित रूप से अपनाया।

मध्य यूरोप के क्षेत्रीय पराग आरेखों (pollen diagrams) को देखें तो ओक, एल्म और लाइम जैसे पेड़ों के पराग कणों में अचानक भारी गिरावट दिखाई देती है। ठीक इसी समय, जंगली झाड़ियों और इंसानी दखल वाले इलाकों में उगने वाले पौधों (जैसे कृषि खरपतवारPlantago lanceolata) और पालतू अनाजों के पराग कणों में तेजी से उछाल आता है।

जंगलों की इस अंधाधुंध कटाई ने जमीन के प्राकृतिक व्यवहार (geomorphological workflow) को पूरी तरह बदल दिया। जब तक जंगल अछूते थे, उनकी घनी पत्तियां बारिश की सीधी मार को रोकती थीं और जड़ों का जाल मिट्टी को अपनी जगह पर बांधकर रखता था। लेकिन जैसे ही ये जंगल साफ हुए, ऊपरी मिट्टी बिल्कुल बेपर्दा हो गई और तेज बारिश के पानी के साथ बहने लगी (sheet erosion)।

यूरोप और लेवेंट की नदियों के जलग्रहण क्षेत्रों (river catchments) में की गई पुरातात्विक खुदाई से इंसानी गतिविधियों के कारण जमा हुई मिट्टी (anthropogenic colluvium) की मोटी परतें मिली हैं। यह मिट्टी मध्य-होलोसीन युग के दौरान पहाड़ियों की ढलानों से बहकर घाटियों के निचले हिस्सों में जमा हो गई थी। इस गाद ने संभवतः नदियों के रास्ते को रोका, वहां के जल चक्र को प्रभावित किया और अंततः उस पूरे इलाके की जमीनी बनावट को हमेशा के लिए बदल दिया।

6. कांस्य युग और प्रारंभिक शहरीकरण: जल-केंद्रित सभ्यताएं और पारिस्थितिकी का दोहन

ईसा पूर्व चौथी और तीसरी सहस्राब्दी के दौरान, इंसानी समाज का दायरा बहुत तेजी से बढ़ा। अब लोग बराबरी वाले छोटे कृषि गांवों से निकलकर ऊंच-नीच में बंटे और घनी आबादी वाले शहरी राज्यों की तरफ बढ़ने लगे थे। इस शहरी क्रांति को चलाने के लिए बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे, विशेष रूप से काम करने वाले कारीगरों और संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की जरूरत थी। यही वजह थी कि इंसान और प्रकृति का रिश्ता अब एक तरह से औद्योगिक पैमाने पर पहुंच चुका था।

जल-केंद्रित सभ्यताएं और हाइड्रोलिक इंजीनियरिंग

कांस्य युग की राज्य-स्तरीय सभ्यताओं का वजूद पूरी तरह इस बात पर टिका था कि वे बड़ी नदियों के अनिश्चित और उग्र मिजाज को कैसे संभालती हैं। कार्ल विटफोगल ने ऐसी सोसायटियों के लिए"**हाइड्रोलिक सिविलाइजेशन**" **(Hydraulic Civilizations)**शब्द का इस्तेमाल किया था, जहाँ बड़े सिंचाई तंत्र को काबू में रखने की साझा जरूरत ने एक मजबूत सरकारी तंत्र को जन्म दिया। हालांकि विटफोगल के राजनीतिक सिद्धांतों पर आज भी विवाद है, लेकिन प्राचीन जल इंजीनियरिंग कितनी विशाल थी, इस बात पर पुरातात्विक साक्ष्यों को देखकर कोई शक नहीं रह जाता।

दक्षिणी मेसोपोटामिया में, उरुक (Uruk) और उर (Ur) जैसे शहर एक बेहद सूखे डेल्टा इलाके में भी सिर्फ इसलिए फलते-फूलते रहे क्योंकि उन्होंने दजला और फरात (Euphrates and Tigris) नदियों पर सरकार द्वारा प्रबंधित नहरों का एक विशाल जाल बिछा रखा था। ये नहरें नदी के पानी को दूर-दराज के खेतों तक ले जाती थीं, जिससे कभी मौसमी दलदल रहने वाला इलाका एक बेहद उपजाऊ अनाज क्षेत्र में बदल गया।

ठीक इसी तरह, सिंधु घाटी (हड़प्पा) सभ्यता के शहर भी अर्ध-शुष्क परिस्थितियों के बावजूद बेहतरीन तरीके से चलते रहे। उदाहरण के लिए, कच्छ के रन के मौसमी नमक के दलदल के बीच बसे**धोलावीरा**को ही देख लीजिए। यहाँ हड़प्पा के इंजीनियरों ने मानसून के पानी को इकट्ठा करने के लिए पत्थरों को काटकर बनाए गए जलाशयों (reservoirs) का एक अद्भुत नेटवर्क तैयार किया था। इसके बाद इस जमा पानी को जटिल स्लुइस गेट्स (sluice gates) के जरिए इस तरह बांटा जाता था कि लोग कड़कती गर्मियों में भी बिना किसी परेशानी के आराम से रह सकें।

शहरी जटिलता की पर्यावरणीय कीमत

हजारों लोगों को एक तंग शहरी दायरे में समेटने का नतीजा यह हुआ कि वहां की स्थानीय वहन क्षमता (carrying capacity) पर भारी दबाव पड़ा, जिसने गंभीर पारिस्थितिक संकटों को जन्म दिया।

1. मानव-जनित खारापन

मेसोपोटामिया में, जल निकासी (drainage) की सही व्यवस्था किए बिना सूखे मौसम में लंबे समय तक की गई सिंचाई ने जमीन में खारेपन (salinization) की समस्या को जन्म दिया। नदी के पानी में घुले हुए नमक की कुछ मात्रा हमेशा होती है, और जब इस पानी को बार-बार समतल और निचले खेतों में छोड़ा गया, तो तेज धूप और वाष्पीकरण (evaporation) ने खेल बिगाड़ दिया। पानी तो भाप बनकर उड़ गया, लेकिन नमक वहीं ऊपरी मिट्टी में जमा रह गया। धीरे-धीरे भूजल का स्तर (water table) ऊपर उठने लगा और यह विनाशकारी नमक फसलों की जड़ों तक पहुंच गया।

वनस्पति-पुरातात्विक साक्ष्य सदियों से चले आ रहे इस पर्यावरणीय पतन की गवाही देते हैं। पुरातात्विक रिकॉर्ड दिखाते हैं कि कैसे नमक के प्रति संवेदनशील एमर गेहूं की पैदावार लगातार घटती गई और उसकी जगह जौ (Hordeum vulgare) ने ले ली, जो खारेपन को थोड़ा बेहतर झेल सकती है। आखिरकार, दक्षिणी मेसोपोटामिया में कृषि व्यवस्था पूरी तरह चरमरा गई और राजनीतिक सत्ता का केंद्र उत्तर की ओर नए क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गया।

2. वनों की कटाई और भट्ठों का प्रभाव

घाटी सभ्यता की सबसे बड़ी पहचान वहां की इमारतों में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होने वाली पकी हुई ईंटें (baked clay bricks) हैं। लाखों-करोड़ों की संख्या में इन मजबूत ईंटों को पकाने के लिए भारी मात्रा में ईंधन की जरूरत थी, और इस प्रक्रिया में कितनी ऊर्जा बर्बाद होती थी, इसका तो अंदाजा ही लगाया जा सकता है।

हड़प्पा के भट्ठों से मिले कोयले के अवशेष (wood charcoal taphonomy) समय के साथ आए एक बड़े बदलाव को दिखाते हैं। शुरुआत में भट्ठों के लिए नदियों के किनारे मिलने वाली बेहतरीन किस्म की सख्त लकड़ियों (जैसेPopulusऔरTamarix) का इस्तेमाल किया गया, लेकिन बाद के दौर में दूर की कम गुणवत्ता वाली झाड़ियों की लकड़ियां मिलने लगीं। यह बदलाव साफ तौर पर सिंधु नदी के किनारों पर बड़े पैमाने पर हुई वनों की कटाई को दर्शाता है। जैसे ही वहां से हरियाली खत्म हुई, नदी की धाराएं अनियंत्रित हो गईं और इसने विनाशकारी बाढ़ की विभीषिका को और बढ़ा दिया।

7. तुलनात्मक विश्लेषण: सभ्यताओं के पतन में जलवायु परिवर्तन बनाम मानव-जनित क्षरण

आधुनिक पर्यावरण पुरातत्व में सबसे गर्मागर्म बहसों में से एक प्राचीन जटिल समाजों के बिखरने या उनके "पतन" को समझने की है। जोसेफ टेंटर जैसे विचारकों का मानना था कि समाज तब चरमरा जाते हैं जब उनकी सामाजिक-राजनीतिक जटिलता पर किया जाने वाला निवेश धीरे-धीरे कम रिटर्न (diminishing marginal returns) देने लगता है। फिर भी, जब हम प्राचीन काल के भौतिक रिकॉर्ड्स को देखते हैं, तो ऐसा लगता है कि इंसानों के फैसले और पर्यावरण में आने वाले प्राकृतिक बदलाव आपस में बहुत उलझे हुए थे। दूसरे शब्दों में, पतन के लिए सिर्फ आंतरिक कमियां जिम्मेदार नहीं थीं, बल्कि जमीन और जलवायु में आने वाले बदलाव भी कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे थे।

4.2 ka BP की जलवायु घटना और उसका बहु-क्षेत्रीय प्रभाव

आज से लगभग 4,200 वर्ष पहले (करीब 2200 ईसा पूर्व), होलोसीन युग के दौरान अचानक मौसम बहुत ठंडा और सूखा हो गया। माना जाता है कि ऐसा अटलांटिक महासागर के जल चक्र में आए बदलावों के कारण हुआ था। इस**4.2 ka BP घटना**ने दुनिया भर में मानसून और बारिश के ढर्रे को पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर दिया, जिसने अलग-अलग क्षेत्रों के राज्यों की मजबूती की कड़ी परीक्षा ली:

- **मिस्र का पुराना साम्राज्य:**पूर्वी अफ्रीकी मानसून के कमजोर पड़ने से नील नदी में आने वाली बाढ़ का स्तर बेहद गिर गया। बिना पानी के खेतों की सिंचाई ठप हो गई और फसलें पूरी तरह बर्बाद हो गईं। नतीजा यह हुआ कि पुराना साम्राज्य राजनीतिक रूप से बिखर गया और चारों तरफ भयानक अकाल फैल गया।
- **अक्कादियन साम्राज्य (मेसोपोटामिया):**मिट्टी की सूक्ष्म-आकृति (soil micromorphology) और ओमान की खाड़ी के गहरे समुद्र से मिले धूल के कणों के संकेतक बताते हैं कि इस इलाके में अचानक भीषण सूखा पड़ा था। उत्तरी मेसोपोटामिया के बारानी खेती (dry-farming) वाले इलाके पूरी तरह नाकाम हो गए, जिससे लोगों को बड़े पैमाने पर दक्षिण के पानी वाले इलाकों की तरफ पलायन करना पड़ा। इस अचानक बढ़े आबादी के दबाव ने वहां के संसाधनों की वहन क्षमता को तोड़ दिया और अक्कादियन राज्य के पतन की गति को और तेज कर दिया।
- **सिंधु घाटी सभ्यता:**भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (Indian Summer Monsoon) के कमजोर पड़ने से घग्गर-हाकरा नदी प्रणाली धीरे-धीरे सूखने लगी और सिंधु नदी में भी बाढ़ का कोई निश्चित ढर्रा नहीं रहा। किसी बड़े नाटकीय पतन के बजाय, हड़प्पा सभ्यता का जवाब अधिक व्यावहारिक और रणनीतिक था—उन्होंने धीरे-धीरे शहरों को छोड़ना (de-urbanization) शुरू कर दिया। लोग मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे बड़े केंद्रों से निकलकर पूर्व की ओर, उप-हिमालयी और गंगा के मैदानों की तरफ बढ़ने लगे। वहाँ उन्होंने विकेंद्रीकृत बस्तियां बसाईं और गांवों पर आधारित कृषि जीवन को अपनाया, जो उस समय के हिसाब से एक समझदारी भरा और व्यावहारिक विकल्प था।

8. सैद्धांतिक चर्चा: एंथ्रोपोसीन की गहरी पुरातात्विक जड़ें

इस शोध पत्र में जिन पुरातात्विक रिकॉर्डों का मूल्यांकन किया गया है, वे आज के एंथ्रोपोसीन (Anthropocene) से जुड़ी बहसों को लेकर कुछ बेहद महत्वपूर्ण और गहरी समझ पैदा करते हैं। आमतौर पर आर्थिक और ऐतिहासिक आख्यानों

में पर्यावरण के इस संकट को एक नई खोज की तरह पेश किया जाता है, जैसे कि यह सब अठारहवीं सदी के कोयला इंजनों या बीसवीं सदी के मध्य में हुए औद्योगिकीकरण की देन हो।

पुरातत्व इस सीमित नजरिए को पूरी तरह खारिज करता है। भौतिक रिकॉर्ड दिखाते हैं कि पारिस्थितिक तंत्र के साथ इंसानों की यह छेड़छाड़ बहुत पुरानी है और यही हमारे विकास की नींव भी रही है। आदि-पाषाण काल के आदिमानवों द्वारा आग के जानबूझकर किए गए इस्तेमाल से लेकर नवपाषाण काल के किसानों द्वारा जंगलों की सफाई तक—इंसान का वजूद हमेशा से ही प्राकृतिक प्रणालियों को अपने हिसाब से ढालने पर टिका रहा है, यह कोई आज की बात नहीं है।

विलियम रुडिमन की"**अर्ली एंथ्रोपोसीन हाइपोथीसिस**"

कहती है कि वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों का स्तर हजारों साल पहले ही बढ़ने लगा था। उनका तर्क है कि यूरोप और एशिया में शुरुआती खेती के लिए की गई वनों की कटाई से इतनी कार्बन डाइऑक्साइड निकली, और धान की सघन खेती से इतना मीथेन पैदा हुआ कि उसने वैश्विक वायुमंडलीय संतुलन को बदल दिया और यहाँ तक कि एक प्राकृतिक हिमयुग (glacial cycle) को भी आगे के लिए टाल दिया।

यह बात बिल्कुल सच है कि आज के औद्योगिक दोहन का पैमाना पहले कभी नहीं देखा गया, लेकिन इसके पीछे का मानवीय व्यवहार—जैसे निकेत निर्माण, संसाधनों को निचोड़ना और स्थानीय वहन क्षमता से आगे निकल जाने की इंसानी फितरत—आज भी अतीत की याद दिलाती है। प्राचीन समाज भी अक्सर इन पारिस्थितिक जालों (ecological traps) में फंसे थे, जहाँ उन्होंने सीमित प्राकृतिक संसाधनों को तब तक असीमित मानकर इस्तेमाल किया जब तक कि प्रकृति की सहनशीलता की आखिरी सीमा नहीं टूट गई।

9. निष्कर्ष: वर्तमान वैश्विक शासन के लिए सुदूर अतीत के सबक

मनुष्य और प्रकृति के बीच तथाकथित तात्विक सीमा मूलतः एक आधुनिक अवधारणा है, और प्राचीन काल के भौतिक अभिलेखों को देखने पर यह स्पष्ट रूप से चुनौती का सामना करती है। इस सहकर्मी-समीक्षित लेख में, हम निम्न पुरापाषाण काल से लेकर जटिल कांस्य युग के शहरीकरण के पतन तक मानव-प्रकृति संबंधों का एक व्यापक वृहद-ऐतिहासिक और सैद्धांतिक संश्लेषण प्रस्तुत करते हैं, और यह हम विभिन्न क्षेत्रों के पुरातात्विक डेटासेटों के गहन विश्लेषण के माध्यम से करते हैं। पर्यावरणीय पुरातत्व, स्थिर समस्थानिक विश्लेषण, भूदृश्य ताफोनी और प्राणी-पुरातत्व एवं पुरावनस्पति विज्ञान मैट्रिक्स को एक साथ लाकर, यह अध्ययन इस प्रश्न को उठाता है कि होमोनिन्स किस प्रकार अपने जैवमंडल के पारिस्थितिक रूप से अंतर्निहित भागों से, जीवमंडल के अधिक सुनियोजित, व्यवस्थित निर्माता बनने की ओर अग्रसर हुए, भले ही यह परिवर्तन सुव्यवस्थित न रहा हो।

हम बहु-दिशात्मक प्रतिक्रिया चक्रों का भी अध्ययन करते हैं जहाँ मानव प्रौद्योगिकी और पारिस्थितिक तंत्र चार महत्वपूर्ण पड़ावों पर एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं: पुरापाषाण काल में स्थान निर्माण और अग्नि का घरेलूकरण; मध्यपाषाण काल की तथाकथित व्यापक क्रांतियाँ; नवपाषाणकालीन कृषि क्रांति से जुड़े सामाजिक-पारिस्थितिक व्यवधान; और सिंधु घाटी, मेसोपोटामिया और नील नदी जैसी कांस्य युग की राज्य स्तरीय समाजों द्वारा किए गए उच्च-घनत्व वाले जलवैज्ञानिक हेरफेर। परिणाम बताते हैं कि पर्यावरण के साथ मानव का जुड़ाव कभी भी सीधा या विशुद्ध रूप से शोषणकारी नहीं रहा है। इसके बजाय, यह गहन सह-विकास, निरंतर विशिष्ट परिवेश निर्माण और चक्रों में लौटने वाले आवर्ती स्थिरता संकटों जैसा प्रतीत होता है। अंत में, यह लेख आज के एंथ्रोपोसीन विवाद को इस तर्क के साथ प्रस्तुत करता है कि प्राचीन मानव-प्रेरित भूदृश्य परिवर्तनों ने अक्सर ऐतिहासिक पारिस्थितिक पतन को जन्म दिया, विशेष रूप से तब जब निष्कर्षण दर स्थानीय वहन क्षमता से अधिक हो गई। और इससे ऐसे अनुभवजन्य सबक मिलते हैं जो वर्तमान जलवायु शमन और पारिस्थितिक शासन के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

संदर्भ

[1]. Agrawal, D. P. (2007). The Indus Civilization: An Interdisciplinary Perspective. New Delhi: Aryan Books International.
[2]. Allchin, B., & Allchin, R. (1982). The Rise of Civilization in India and Pakistan. Cambridge: Cambridge University Press.
[3]. Barker, G. (2006). The Agricultural Revolution in Prehistory: Why did Foragers become Farmers? Oxford: Oxford University Press.

[4]. Central Statistical Organisation (CSO). (2008). Women and Men in India. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India, New Delhi.
[5]. Chakrabarti, D. K. (1999). India: An Archaeological History. New Delhi: Oxford University Press.
[6]. Childe, V. G. (1936). Man Makes Himself. London: Watts & Co.
[7]. Flannery, K. V. (1969). Origins and ecological effects of early domestication in Iran and the Near East. The Domestication and Exploitation of Plants and Animals, 73-100.
[8]. Ganesan, S. (2003). Status of Women Entrepreneurs in India. Kanishka Publishers, New Delhi.
[9]. Lall, M., & Sahai, S. (2008). Web-Based Models of Women Entrepreneurship: A Study of Accelerated Growth in Emerging Markets. Journal of Asia Entrepreneurship and Sustainability, 4(2), 112–125.
[10]. Misra, V. N. (2001). Prehistoric human colonization of India. Journal of Biosciences, 26(4), 491-531.
[11]. National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector (NCEUS). (2007). Report on Conditions of Work and Promotion of Livelihoods in the Unorganised Sector. Government of India, New Delhi.
[12]. Possehl, G. L. (2002). The Indus Civilization: A Contemporary Perspective. New Delhi: Vistaar Publications.
[13]. Ruddiman, W. F. (2003). The anthropogenic greenhouse era began thousands of years ago. Climatic Change, 61(3), 261-293.
[14]. Shanthi, K. (2006). Women in the Informal Sector: Case of Indian Economy. Indian Journal of Gender Studies, 13(2), 273–295.
[15]. Singh, U. (2008). A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century. New Delhi: Pearson Education.
[16]. Tainter, J. A. (1988). The Collapse of Complex Societies. Cambridge: Cambridge University Press.
[17]. Thapar, R. (2002). Early India: From the Origins to AD 1300. London: Penguin Books.
[18]. Weiss, H., Courty, M. A., Wetterstrom, W., Guichard, F., Senior, L., Meadow, R., & Curnow, A. (1993). The genesis and collapse of Third Millennium North Mesopotamian Civilization. Science, 261(5124), 995-1004.
[19]. Wittfogel, K. A. (1957). Oriental Despotism: A Comparative Study of Total Power. New Haven: Yale University Press.
[20]. World Bank. (2007). Gender Assessment Report for the South Asia Region: Scaling Up Female Labor Force Participation and Economic Independence. World Bank Group, Washington D.C.